© 2010 | International Journal of Scientific Research in Science and Technology
IJSRST | Volume II | Issue I | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X

अशोक-पूर्व बौद्ध धर्म तथा संघ की स्थिति

अभिजात ओझा
शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग
डॉ0 राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय,
फैजाबाद उत्तर प्रदेश, भारत।

बिन्दुसार के शासन काल के आस-पास महासांघिक और मूल थेरवाद दोनों कुछ उपसम्प्रदायों में विभक्त हुए। महावंश से ज्ञात होता है कि अशोक के पिता ब्राह्मणों का सेवा-सत्कार करते थे जिसका तीन वर्षो तक अशोक भी पालन करता रहा।[1] अशोक की आजीविक धर्म के प्रति किन्चित श्रद्धा की बात भी विदित होती है जिसकी पुष्टि अभिलेखीय स्रोत भी करते हैं।[2] चूंकि अशोक धर्मसहिष्णु शासक था, अत: इसमें आश्चर्य नहीं करना चाहिए। कलिंग विजय के परिणामस्वरूप ही अशोक ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया या कोई अन्य कारण भी था, यह तथ्य किन्चित विवादास्पद हो सकता है। पर इतना सुनिश्चित है कि ये दोनों घटनायें अशोक के राज्याभिषेक के आठवें वर्ष में घटीं।[3] यदि महावंश के कथानक को सत्य स्वीकार किया जाय तो इन आठ वर्षों के पूर्व सद्धर्म की आकर्षक स्थिति प्रतीत होती है। महावंश के अनुसार एक बौद्ध भिक्षु से प्रभावित होकर बहुत से मित्रों आदि के साथ राजकुमार तिस्स अशोक के राज्याभिषेक के चौथे साल में संघ में दीक्षित हुआ और इसी प्रकार संघमित्रा के पति तथा राजा के भतीजे ने भी संघ में प्रवेश लिया।[4] इससे अनुमान होता है कि अशोक के बौद्ध धर्म ग्रहण करने के पूर्व ही सद्धर्म यथेष्ट गतिशील और प्रभावप्राप्त अवस्था में था।

महावंश का तृतीय संगीति का विवरण अतिशयोक्तिपूर्ण होते हुए भी उपर्युक्त निष्कर्ष की पुष्टि करता है। अशोक की श्रद्धालुता से बौद्ध धर्म की स्थिति निश्चय ही सबल हुई। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है कि लाभ एवं सत्कार की प्राप्ति के लिए अन्य तैर्थिक भी बौद्ध भिक्षुओं के साथ-साथ छद्म-वेष में रहने लगे थे और वहाँ अपने ही मतों को बौद्ध मान्यता के रूप में प्रचारित करते थे।[5] इस अव्यवस्था से पाटलिपुत्र के भिक्षुसंघ के प्रधान भिक्षु मोग्गलिपुत्त तिस्स क्षुब्ध हो अहोगंग पर्वत पर चले गए। अन्य तैर्थिकों की अधिकता और अनुशासनहीनता को संयमित कर पाना सरल न था। अत: समस्त जम्बूद्वीप के आराम में 7 वर्ष तक उपोसथ ही नहीं हुआ।[6] सम्पूर्ण जम्बूद्वीप की बात तो निश्चय ही अतिशयोक्ति पूर्ण है, पर उपर्युक्त वक्तव्य से यह आशय लिया जा सकता है कि अशोकाराम में 7 या कई वर्षो तक उपोसथ न हो सका। राजकीय हस्तक्षेप से स्थिति पातकपूर्ण हो गयी। चूँकि इस संगीति का मात्र पालि परम्परा में ही उल्लेख प्राप्त होता है, अत: इस संगीति को एकनिकायिक और स्थलीय संगीति में मतपृच्छा के अनन्तर अन्य तैर्थिकों या भ्रष्टाचरित भिक्षुओं को अलग कर दिया गया।[7]

संगीति के अनन्तर तिस्स द्वारा विभिन्न दिशाओं में सद्धर्म के प्रचार-प्रसार के लिए प्रधान भिक्षु भेजे गए थे। ये स्थल थे- कश्मीर, गन्धार, महिषमण्डल, बनवासी, सुवर्णभूमि, अपरान्त, सिंहलद्वीप, महाराष्ट्र और योन (ग्रीक) देश।[8] इससे इस तथ्य पर प्रकाश पड़ता है कि यद्यपि अशोक के समय के पूर्व भारत के ही महाराष्ट्र, अपरान्त जैसे पश्चिमी क्षेत्रों में, वनवासी, महिषमण्डल जैसे दक्षिणी क्षेत्रों में तथा कश्मीर, गन्धार जैसे उत्तर और पश्चिमोत्तर क्षेत्रों में सद्धर्म अविदित था, यहाँ बौद्ध भिक्षुओं के केन्द्र नहीं स्थापित हुए थे, परन्तु इस सीमा के भीतर उसकी सबल व्याप्ति थी।

थेरवादी बौद्ध परम्परा प्राय: अशोक के पूर्व ही सद्धर्म के 18 सम्प्रदायों में विभाजन की बात स्वीकार करती है। साथ ही उक्त सभी सम्प्रदाय किसी न किसी रूप में अपनी प्राचीनता की सिद्धि के लिए बुद्धकालीन भिक्षुओं से अपना सम्बन्ध स्थापित करते हैं। इस प्रकार के दावों को यथावत् स्वीकार करने का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि स्वयं इन सम्प्रदायों की मान्यतानुसार ही द्वितीय संगीति के बाद ही संघभेद हुआ। यद्यपि द्वितीय संगीति के विवरण, महादेव के पाँच प्रस्तावों एवं अशोक कालीन तृतीय संगीति के साक्ष्यों तथा पालि परम्परा से इतर इसके अनुल्लेख से स्पष्ट है कि अशोक के पूर्व बौद्ध संघ कुछ सम्प्रदायों में विभक्त हो गया था। अनेक आधुनिक विद्वानों ने भिक्षु संघ में निकाय भेद के उपर्युक्त स्रोतों का अध्ययन किया है और इस सम्बन्ध में विविध विचार व्यक्त किए है।[9] अपेक्षाकृत हाल का और सबसे विस्तृत विवरण बरो महोदय का है जिनके निष्कर्ष को अब प्राय: स्वीकार कर लिया गया है[10] यद्यपि किन्ही-किन्ही संदर्भो में उनका अनुमान भी सदोष माना गया है।[11] वस्तुत: विभिन्न सम्प्रदायों की संख्या, नाम निर्धारण, उत्पत्ति का स्थान, समय, कारण आदि और निकाय भेद के सामान्य क्रम के सम्बन्ध में निर्विवाद रूप से कहना कठिन है।

विभिन्न परम्पराओं के वर्णन के आधार पर उत्तरकालीन शाखाओं और प्रशाखाओं के भेद को छोड़कर ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीनतम और मुख्यतम निकाय थे- महासांघिक, वात्सीपुत्रीय, स्थविरवादी और सर्वास्तिवादी।[12] कुछ विद्वानों ने महीशासक सम्प्रदाय को भी प्राचीन स्वीकार किया है जो पालि परम्परा के साक्ष्य से उचित प्रतीत होता है।[13] सभी परम्परायें इस पर सहमत हैं कि प्रथमत: मूल संघ से महासांघिक अलग हुए, पर अवसर एवं तात्कालिक कारण के संदर्म में कुछ विवाद है। महावंश के अनुसार द्वितीय संगीति के परम्परावादी भिक्षुओं के निर्णय से असन्तुष्ट वज्जिपुत्तक भिक्षुओं ने अलग से महासांघिक सम्प्रदाय की स्थापना की।[14] दीपवंश के अनुसार द्वितीय संगीति के निर्णय से असन्तुष्ट भिक्षुओं ने अलग से 10,000 भिक्षुओं की एक संगीति की। उन्होंने अपने अनुरूप कुछ विनय-सूत्र के नियमों के क्रम और व्याख्या में कतिपय परिवर्तन किया, और परिवार, परिसम्मिदावग्ग, निद्देश, कुछ जातक एवं अभिधम्म के छ: ग्रन्थों की प्रामाणिकता को अस्वीकार किया।[15] 'उल्लेखनीय है कि उनके इन ग्रन्थों को अप्रामाणिक मानने की महत्ता को आधुनिक विद्वान भी स्वीकार करते हैं।[16]

इन दोनों ग्रन्थों के अनुसार 10 वैनयिक वस्तुओं के कारण ही विवाद और संघभेद हुआ। दूसरी तरफ वसुमित्र, भव्य एवं विनीतदेव एक स्वर से संघभेद के कारणस्वरूप महादेव के अर्हद्विषयक पाँच प्रस्तावों-(1) अर्हतों के लिए भी राग सम्भव है, (2) अर्हतों में भी अज्ञान सम्भव है, (3) अर्हतों में संशय संभव है, (4) अर्हत भी दूसरे के द्वारा ज्ञान पा सकते हैं, (5) सहसा शब्दोच्चारण से मार्ग की प्राप्ति हो सकती है, को स्वीकार करते है।[17] सम्मितीय परम्परा

महासांघिकों के संस्थापक और पाँच प्रस्तावक के रूप में भद्र को स्वीकार करती है। वस्तुत: भद्र और महादेव दोनों एक से लगते हैं।[18]

अत: यह विवादास्पद है कि संघभेद का कारण विनय के 10 नियम थे या महादेव के पंचसिद्धांत।[19] विनय के द्वितीय संगीति के विवरण से इतना स्पष्ट है कि सभी भिक्षुओं ने उद्वाहिका परिषद के निर्णय को एकमत हो स्वीकार किया। अत: संगीति के अवसर पर या उसके तत्काल बाद किसी दूसरी परिषद या संघभेद की सम्भावना का कोई औचित्य नहीं प्रतीत होता। बल्कि मतभेद के समय को संगीति के कुछ बाद और अशोक से कुछ ? स्वीकार करना चाहिए। उत्तरी एवं दक्षिणी दोनों परम्पराओं के अध्ययन से ऐसा आभास होता है कि पूर्वी भिक्षु पश्चिमी भिक्षुओं से वैनयिक नियमों एवं सिद्धान्तों के संदर्भ में दिन-ब-दिन दूर होते जा रहे थे। द्वितीय संगीति के अर्हतों के निर्णय से वे विशेष असन्तुष्ट हुए और कालान्तर में महादेव के नेतृत्व में उन्होंने अर्हतो का सैद्धान्तिक विरोध करते हुए पाटलिपुत्र में एकमात्र महासांघिक सम्प्रदाय के रूप में अपना स्वतंन्त्र संगठन किया। चूंकि महादेव के काल को 137 बुद्धाब्द में रखा जाता है और यह तिथि महापद्मनन्द के काल की है, अत: संघभेद की घटना को महापद्मनन्द के समय में मानना चाहिए।[20] बौद्ध संघ का थेरवादी और महासांघिक दो समूहो में विभाजन वस्तुत: परम्परावादी और उदारतावादी या पुरोहितवादी और गणतन्त्रवादी भिक्षुओं का विभाजन स्वीकार करना चाहिए।[21]

संदर्भ : -

1. महावंश, 5.34-35
2. वार्डर, ए.के., इण्डियन बुद्धिज्म, पृ0 243
3. भण्डारकर, डी.आर., अशेक (हिन्दी अनु.), पृ0 69-70
4. महावंश, 5.163-70
5. वही, 5.228-30
6. वही, 5.233-35
7. वही, 5.271
8. वही, 12.1-7
9. थामस, द हिस्ट्री ऑव बुद्धिस्ट थाट, पृ0 29-41, परिशिष्ट, 288-92
10. पाण्डे महोदय, बारो के मत को सम्मान देते हैं। बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 173
11. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म के विकास का इतिहास, पृ0 191
12. पाण्डे, वही, पृ0 181
13. दत्त, नलिनाक्ष, बृद्धिस्ट सेक्ट्स इन इण्डिया, पृ0 129-30
14. महावंश, 5.1-4
15. दीपवंश, 4 एवं 5, पृ0 32-33
16. पाण्डे, पूर्वो0, पृ0 174 ; दत्त, नलिनाक्ष, पूर्वो0, पृ0 61 जहाँ अन्य विद्वानों के मत भी प्रस्तुत हैं।
17. पाण्डे, वही, पृ0 174

18. वार्डर, इण्डियन बुद्धिज्म, पृ0 215 और आगे
19. ह्वेनसांग दोनों का उल्लेख करते हैं।
20. तुलनीय, वार्डर, पूर्वो0, पृ0 213–14
21. बापट, पी.वी. (सम्पा.), 2500 इयर्स ऑव बुद्धिज्म, पृ0 88